ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 **SHRINKHALA :** VOL-1 * ISSUE-9*MAY-2014

भारत में न्याय व सामाजिक न्याय : एक अवलोकन

आशा रानी
प्राध्यापक
राजनितिक विज्ञान
रा0 व0 मा0 विद्यालय,
फतेहाबाद

सारांश

न्याय की अवधारणा बहुत ही प्राचीन है । न्याय की अवधारणा राजनीतिक सिद्धान्त में महत्वपूर्ण स्थान रखती है और इसका सम्बन्ध व प्रभाव मनुष्य जीवन के प्रत्येक पक्ष से है । सदियों से मनुष्य न्याय प्राप्त करने के यत्नशील रहा है और यदि उसको समाज में उचित न्याय नहीं मिलता तो भगवान से सच्चे न्याय की प्रार्थना करता है । न्याय ही वह जीवन का आधार है जो मनुष्य को सत्य, कर्म, अहिंसा और ईमानदारी की राह पर ले जाता है । न्यायिक व्यक्ति ही दूसरों के साथ सच्चाई और ईमानदारी का पालन करता है । अत्याचार से ग्रस्त व्यक्ति को न्याय द्वारा ही छुटकारा मिलता है । न्याय की अवधारणा का अध्यन करने का मुख्य उदेष्य न्याय की महत्वता व कमियों पर विचार करना व सुधार के उपाए बताना है। क्यांकि न्याय एक देश की सर्वोतम वयवस्था है जो कि समाज की भावना से जुडी हुई है जैसा की– न्याय ही अराजकता, कलह, विवाद, अशांति भ्रष्टाचार और शोषण से मुक्ति देता है । न्याय की भावना मानव जीवन और सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला है । न्याय ही प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के प्रति अधिकारों व स्वतन्त्रताओं का लाभ उठाने का माहौल बनाता है । यदि किसी स्थान की न्यायिक व्यवस्था उत्तम होती है तो वहां का कण–कण विकास करता है । न्याय की भावना सामाजिक सम्बन्धी और निजि स्वार्थी के बीच एक उचित संतुलन बनाती है । जिससे व्यक्ति की सामाजिक व्यवस्था एक नैतिक आधार लेकर मजबूत बनती जाती है । न्याय के बिना किसी का जीवन और सम्पति भी सुरक्षित नहीं । न्याय के बिना एक सुदड़ समाज और राज्य की कामना भी नहीं की जा सकती । न्याय और न्यायिक व्यवस्था के तो समाज में एक जंगल जैसा माहौल बन जाएगा । न्याय के अनेक रूपों में से सामाजिक न्याय काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता है । सामाजिक न्याय व्यक्ति के जीवन की एक ऐसी कड़ी है जिसके बिना व्यक्ति का कोई आसित्व भी नहीं । सामाजिक न्याय की अवधारणा का सम्बन्ध अर्थिक न्याय के साथ भी जुड़ा है। सामाजिक न्याय की अवधारणा से पहले हम न्याय का अर्थ और परिभाषा को जाने ।

मुख्य शब्द : सामाजिक न्याय व्यवस्था, समाज व कानूनी भागीदारी।

प्रस्तावना

भारत के प्राचीन राजनीतिक चिन्तन में न्याय की धारणा को बहुत ही प्रतिष्ठा प्राप्त है । मानव समाज जितना पुराना है । उतना ही न्याय की अवधारणा भी है । न्यायिकी में ही न्याय की अवधारणा की विवेचना की है । प्लेटो के अनुसार न्याय का सम्बन्ध मनुष्य की आत्मा से है और उनके राज्य जोकि व्यक्ति का ही बहु रूप है। अतः व्यक्ति की आत्मा राज्य में न्याय की स्थिति सार रूप में एक सी है। अरस्तु ने भी न्याय को प्लेटो की भांति न्याय को दो भागों में वर्णन किया है जैसे

1. **वितरणात्मक या राजनीतिक न्याय 2. सुधारक न्याय है।**

भारत में तो न्याय को ही राज्य का आधार माना गया है । मनु, कौटिल्य, वृहस्पति, शुक्र, भारद्वाज एवं सोमदेव आदि ऐसे अनेक विचारकों ने राज्य की व्यवस्था के लिए न्याय को प्रमुख आधार बताया है। मनु ने न्याय की व्यवस्था में सत्यता और स्पष्टता पर बल दिया है ।

कोटिल्य ने भी न्याय को राज्य का प्राण माना है । आधुनिक युग में भी भारत में न्याय की धारणा में काफी हद तक परिवर्तन हुआ है । अब तो न्याय वह है जो विधि अर्थात कानून द्वारा निहित हो।[1]

न्याय अर्थ एवं परिभाषा

न्याय को अंग्रेजी में जस्टिस कहते हैं । जस्टिस शब्द लैटिन भाषा के शब्द जस से बना है जिसका अर्थ होता है बंधन या बंधना इसका अभिप्राय यह है कि न्याय उस व्यवस्था का नाम है जिसके द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से जुड़ा हुआ है । न्याय की भाषा का इस बात से संबंध है कि एक व्यक्ति के दूसरे के साथ नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा कानूनी संबंध क्या

हैं प्लेटो के अनुसार "न्याय वह गुण है जो अन्य गुणों के बीच मिलन स्थापित करता है।"

सालमंड के अनुसार "प्रत्येक व्यक्ति को उसका भाग प्रदान करना।"

न्याय विशेषताएं एवं तत्व

न्याय के निम्नलिखित तत्व हैं और विशेषताएं इस प्रकार है।

- एक नैतिक अवधारणा है।
- एक पविर्तनशील अवधारणा है ।
- निष्पक्षता ।
- बहुपक्षीय अवधारणा है ।
- कानून और नैतिक न्याय में संबंध

कानूनी और नैतिक न्याय में संबंध पंरपरागत रूप से न्याय की दो धाराणाएं रही हैं नैतिक और कानूनी, न्याय राज्य में कानून द्वारा स्थापित सिद्धांत व प्रक्रिया से सबंधित है । नैतिक न्याय का संबंध ठीक और गलत से है। यदि कोई कानून नैतिक–न्याय के आदर्शों के अनुसार नहीं है तो उस अन्याय कहा जा सकता है । उदाहरण के लिए माता–पिता का कर्त्तव्य है कि वह अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दें, परन्तु यदि कोई माता–पिता अपने बच्चों को शिक्षा नहीं देते तो वह बच्चों के साथ नैतिक न्याय नहीं कर रहे हैं। पर न्यायालय ऐसे माता–पिता को दंड नहीं दे सकता ।[2]

न्याय और अधिकार

न्याय और अधिकार की बात का जुड़ाव केवल न्यायपालिका से ही नहीं है । न्याय एक चरित्र है । जैसे बहादुरी एक चरित्र है, मिलनसार होना एक चरित्र है, न्याय आता है उस पड़ोस से, जिसने आपके साथ अन्याय होते देखा है और उसके खिलाफ वह आपके साथ खड़ा होता है न्याय आता है उस अधिकारी और तंत्र से जहां आप अपने हक के लिए जाते हैं, जैसे उस पुलिस थाने के अधिकारियों और कर्मचारियों से, जो आपके हक को समझे और आपके साथ ऐसा व्यवहार करें, जिससे आपका मनोबल और व्यवस्था में विश्वास बरकरार रहे । यदि उसका चरित्र न्यायिक नहीं नहीं है तो वह आपके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं करेगा और आपका केस इस तरह से दर्ज नहीं किया जाएगा । जिससे आपको आगे चल कर न्याय मिले सके, इसके बाद आप अदालत मे जाते हैं।

जरा इस उदाहरण को देखिये, वर्ष 2006 में भारत सरकार ने आदिवासियों और अन्य परंपरागत वन निवासियों के वनों पर अधिकार के लिए कानून बनाया । अब जरा इसके प्रावधान देखिये । वनों पर सामुदायिक हकों को हासिल करने के लिए गांव के लोगों को यह दस्तावेजी प्रमाण देना होगा कि वे जंगल का उपयोग सांस्कृतिक, धार्मिक, जीवनयापन, आवाजाही, दैनिक उपयोग के लिए लघु वन उपज लेने या चराई के लिए करते रहे हैं ।[3]

न्याय : विभिन्न रूप

राजनीति शास्त्र में न्याय को बहुत अधिक महत्व दिया गया है । हर युग में समाज के अन्दर न्याय की मांग रही है । इसीलिए आज न्याय के अनेक रूपों या प्रकारों में न्याय की चर्चा की जाती है।

- प्राकृतिक न्याय।
- नैतिक न्याय।
- सामाजिक न्याय ।
- राजनीतिक न्याय ।
- आर्थिक न्याय।

न्यायिक व्यवस्था : भारतीय सविधान में क्रांति

सामाजिक न्याय भारतीय संविधान की आधारशिला है। यद्यपि सामाजिक न्याय को संविधान में कहीं परिभाषित नहीं किया गया है । फिर भी भारतीय संविधान का प्रमुख स्वर और अनुभूति सामाजिक न्याय ही है। यहां समाज और न्याय के प्रति लचीला रूख अपनाते हुए न्यायिक व्यवस्था को मुक्त रखा गया है ताकि सामाजिक परिस्थितियों, आयोजनों, संस्कृति समय तथा लक्ष्य के अनुरूप इसमें आवश्यक परिवर्तन किये जा सकें। डा0 अंबेडकर कहना था कि – "लोकतंत्र को बनाये रखने के लिए संवैधाानिक मूल्यों–अधिकारों का पालन करना होगा।"

भारतीय संविधान अपनी संरचना – सुदृढ़ता और लोकतांत्रिक मूल्यों के कारण निश्चित ही सर्वोत्कृष्ट है । सामाजिक एकता और न्याय से ओत–प्रोत संविधान के निर्माणकर्ताओं ने 'सोशल वेलफेयर स्टेट' (सामाजिक कल्याणकारी राज्य) की स्थापना को बल दिया जिसकी मूल धारणा आय, पद और प्रतिष्ठा में असमानता को समाप्त करना हो । अब जाति, रंग, समूह, धर्म, लिंग आदि के स्तरों पर हमें समान अधिकार प्राप्त है । 'समानता' शब्द से तात्पर्य समान भावना से ही है जिसमें किसी खास वर्ग को उत्कृष्ट ठहराना गलत है तथा बिना किसी भेदभाव के समान अवसरों को प्रदान करना है । इस प्रकार सामाजिक न्याय के अंतर्गत हमें निम्न अधिकारों की प्राप्ति होती है।[4]

- कानून के समक्ष समानता
- धर्म, जाति, वर्ग और लिंग जन्म–स्थान के आधार पर भेदभाव का बहिष्कार
- सार्वजनिक आयोजनों और रोजगारों में समानता का अवसर
- अस्पृश्यता का अंत
- जाति–सूचक उपनाम का अंत

सामाजिक न्याय : अर्थ

सामाजिक न्याय का अर्थ है कि समाज में रहने वाले सभी व्यक्ति समान हैं । किसी विशेष जाति, धर्म, भाषा, लिंग, वर्ग, जन्मस्थान, रंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होनी चाहिए। सभी व्यक्तियों को कानून के समक्ष समानता होनी चाहिए । सभी व्यक्तियों के विकास के लिए समसन अवसर प्राप्त होने चाहिए तथा व्यक्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करना चाहिए । सामाजिक न्याय का मुख्य उद्देश्य व लक्ष्य समतावादी समाज तथा समाजवादी कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है ।

- पी0 डी0 गजेन्द्र गडकर के अनुसार,"सामाजिक न्याय का अर्थ सामाजिक असमताओं को समाप्त करके सामाजिक क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर देन से है।"

- लास्की के अनुसार, "समान सामाजिक अधिकारों की व्यवस्था करना ही सामाजिक न्याय है।"[5]

सामाजिक न्याय के मूल तत्व निम्नलिखित हैं ।

- सामाजिक समानता
- सीमित सम्पति
- श्रम का महत्व
- सार्वजनिक स्थानों का सभी के लिए खुला होना ।
- समानता
- सामाजिक सुरक्षा

भारत में सामाजिक न्याय

वैसे तो प्राचीनकाल से ही भारत में सामाजिक न्याय का समर्थन हुआ है । कौटिल्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में लिखा था कि राज्य अनाथों, असहायों, अपंगों आदि को निर्वाह के साधन प्रदान करेगा, स्त्रियों, बच्चों व बीमारों को सुविधएं देगा और आर्थिक व्यवस्था का गठन इस ढंग से करेगा कि नागरिकों को न्याय प्रदान किया जा सके । 19वीं शताब्दी में समाज–सुधारकों और राष्ट्रीय नेताओं ने इन बुराइयों को दूर करने के प्रयत्न किए । 20वीं शताब्दी में महात्मा गांधी ने हरिजनों के कल्याण के लिए विशेष कार्य किए । 1947 मे स्वतंत्र प्राप्ति के बाद सामाजिक न्याय की व्यवस्था के लिए सरकार ने विशेष कदम उठाए और संविधान के द्वारा भी भारत में सामाजिक न्याय की व्यवस्था करने के प्रयत्न किए ।

ब्रिटेन ने भारत पर 200 वर्षों तक शासन किया एक उपनिवेश की तरह अपने साम्राज्य के एक हिस्से की तरह, एक गुलाम की तरह । वे भारत व्यापार के लिए आये थे और धीरे–धीरे व्यवस्था – राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के भीतर घुसते चले गए । उन्होंने कानून इसलिए बनाए ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ उठने वाली आवाजों का दमन किया जा सके । इसके लिए उन्होंने 1861 में पुलिस कानून बनाया और एक ऐसी व्यवस्था खड़ी की जिसका काम कानून व्यवस्था के नाम पर समाज पर नियंत्रण करना था ।

भारतीय संविधान : सामाजिक न्याय

भारतीय संविधान के निर्मताओं की यह हार्दिक इच्छा थी कि भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना की जाए । इसलिए उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु संविधान में कुछ ऐसे प्रावधानों की व्यवस्था की जिनके आधार पर सामाजिक न्याय की स्थापना की जा सके ।

पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में देश सेवा का अर्थ है लाखों दुःखी लोगों की सेवा करना। इसका अर्थ है गरीबी, अज्ञानता, बीमारी और अवसर की असमानता को दूर करना । हमारी पीढ़ी के महानतम व्यक्ति की महत्वाकांक्षा हर एक व्यक्ति की आंखों से आंसू पोछना रही है। यह हमारी सामथर्य से परे हो सकता है, परन्तु जब आंसू और कष्ट है, हमारा काम खत्म नही होगा । बापू के उन्हीं सपनो को पूरा करना हमारा संकल्प हो ना चाहिए।' सभी जीव–जंतु और मनुष्य मात्र का विशाल परिवार हमारी पृथ्वी है। वसुधैव कुटुम्बकम' की प्राचीन भारतीय अवधारणा सामाजिक न्याय की गहनतम अभिव्यक्ति है । अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन के संविधान के अनुसार– "सामाजिक न्याय के बिना सर्वव्याप्त और अनंत शांति की प्राप्ति बेमानी है।" सामाजिक न्याय दरअसल वैसे समाज या संगठन को स्थापित करने की अवधारणा है जो समानता तथा एकता के मूल्यों पर आधारित हो, साथ ही मानव अधिकारों के मूल्यों को समझे तथा प्रत्येक मनुष्य की प्रतिष्ठा को भी पहचाने।

अथर्ववेद के 'पृथ्वीसुक्त' में 'पृथ्वी परिवार' की परिकल्पना की गई है। समानता, न्याय दरअसल प्रारंभ से मानवीय सभ्यता का मूल बिंदु रहा है । अलगाव, विभेद, अत्याचार, असमानता आदि सभ्यता की कमजोर कड़ी है। भारतीय समाज में जाति की सच्चाई और शोषण की गाथा एक बड़ा सवाल रहा है। ऋग्वेद के कवियों से लेकर कबीर, रैदास, तुलसी और अन्य अनेकों संत–महात्माओं, समाज–सुधारकों ने किसी–न–किसी रूप में अपने–अपने समय सामाजिक सांस्कृतिक दर्द को और मानवीय आदर्शों को अभिव्यक्त किया है। प्रख्यात निबंधकार पं0 विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में – "भारतीयता निःशेष होने का फक्कड़पन है । सब कुछ सबका है का मूल आदर्श।"[6]

संविधान के तहत भारत के नागरिकों को जो मौलिक अधिकार 14 से 32 तक दिए हैं उन में सामाजिक न्याय का वर्णन इस प्रकार है ।

- भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भारत को एक समाजवादी धर्म–निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है, जो सामाजिक समानता, सामाजिक स्वतंत्रता तथा आर्थिक न्याय की ओर इशारा करता है और ये सभी बातें सामाजिक न्याय के आधार है ।
- धारा 14–15 में सभी नागरिकों को समानता का अधिकार दिया गया है तथा सभी पर समान कानून लागू होते हैं और कानून के सामने सभी समान है । जाति, धर्म, वंश, रंग, लिंग आदि के आधार पर व्यक्तियों में कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता और सभी व्यक्तियों को अपने जीवन के विकास के अवसर प्रदान किए गए हैं ।
- धारा 17 में छुआछुत को गैर कानूनी घोषित किया गया है और सभी सार्वजनिक स्थान सभी लोगों के लिए समान रूप से खोल दिए गए हैं ।
- धारा 19 में लोगों को विभिन्न प्रकार की स्वतंत्रताएं प्रदान की गई है जो बिना किसी भेदभाव के जनता को दी गई है और ये सामाजिक न्याय को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
- अनुच्छेद 23 के अनुसार मनुष्यों के व्यापार, बेगार तथा इच्छा के विरूद्ध काम करवाने की मनाही। इस व्यवस्था की अवहेलना दंडनीय अपराध है ।
- अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु वाले किसी भी बालक को किसी कारखाने अथवा खान में नौकर नहीं रखा जा सकता ।
- संपति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची में से निकालना आर्थिक न्याय की ओर से एक कदम है, जो सामाजिक न्याय का आधार है । बेगार की समाप्ति कर दी गई है और लोगों को शोषण के विरूद्ध अधिकार दिया गया है ।
- धारा 29 और 30 में अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक व शैक्षणिक विकास के लिए उन्हें मौलिक अधिकार दिए

गए हैं, मौलिक अधिकारों के साथ–2 राज्य के नीति निदेशक सिद्धधांतों में भी इस प्रकार के प्रावधान है जिनके द्वारा सामाजिक न्याय को प्राप्त किया जा सकता है तथा उनका वर्णन इस प्रकार है

- अनुच्छेद 38 के अनुसार, राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करेगा, जिसमें सभी नागरिकों को राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय प्राप्त हो ।
- अनुच्छेद 42 के अनुसार राज्य न्यायपूर्ण तथा मानवीय दशाओं और प्रसूति सहायता की व्यवस्था करेगा ।
- अनुच्छेद 43 के अंतर्गत मजदूरों के लिए जीवनोपयोगी वेतन प्राप्त कराने का राज्य प्रयत्न करेगा।
- अनुच्छेद 46 में यह स्पष्ट कहा गया है कि राज्य समाज के कमजोर वर्गों के शैक्षणिक और आर्थिक हितों की विशेष रूप से वृद्धि करे और उनका सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से संरक्षण करे ।
- अनुच्छेद 47 के अनुसार राज्य लोगों के जीवन–स्तर को ऊँचा करने का प्रयास करेगा।[7]

समाजिक न्याय की महत्ता

सामाजिक न्याय का आशय आम तौर पर समाज में लोगों के मध्य समता, एकता, मानव अधिकार, की स्थापना करना है तथा व्यक्ति की गरिमा को विशेष महत्व प्रदान करना है। भारतीय समाज में सदियों से सामाजिक न्याय की लडाई आम जनता और शासक तथा प्रशासक वर्ग के मध्य होती आई है। यही कारण है कि इसे हम कबीर की वाणी बुद्ध की शिक्षा, महावीर की दीक्षा, गांधी की अहिंसा, सांई की सीख, ईसा की रोशनी, नानक के संदेश में पाते हैं।

सदियों से मानव सामाजिक न्याय को प्राप्त करने भटकता रहा है और इसी कारण दुनिया में कई युद्ध, क्रांति, बगावत, विद्रोह, हुये हैं हमारा भारतीय समाज पहले वर्ण व्यवस्था पर आधारित था जो धीरे धीरे बदलकर जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गया, उसके बाद असमानता, अलगाववाद, क्षेत्रवाद, रूढिवादिता, समाज में उत्पन्न हुई जिसका लाभ विदेशियों के द्वारा उठाया गया और ''फूट डालो और राज्य करों'' की नीति अपनाकर भारत को एक लम्बी अवधि तक पराधीन रखा।

- लोगों की एकता अखण्डता और भाईचारे की भावना से आजादी की लडाई लड़ने पर भारत 15 अगस्त सन् 1947 को आजाद हुआ और उसके बाद भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना, व्यक्ति का शासन, सोच की स्वतंत्रता, भाषण प्रेस की आजादी, संघ बनाने की स्वतंत्रता हो, इसके लिए सर्वोच्च कानून बनाये जाने की आवश्यकता समझी गई ।
- संविधान सभा की कई बैठकों के बाद भारत के संविधान की रचना की गई, जो विश्व का सबसे बडा, लिखित, अनूठा, संविधान है जिसमें सामाजिक न्याय को सर्वोच्चता प्रदान की गई है। यह दुनिया का सामाजिक न्याय को दर्शित करने वाला एक प्रमाणिक अभिलेख है।
- सामाजिक न्याय का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित के बीच सामान्जस्य स्थापित करना है। इसलिए कल्याणकारी राज्य की कल्पना संविधान निर्माताओं ने की है। बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय को ध्यान में रखते हुये समाजवादी व्यवस्था स्थापित की गई है।
- भारतीय समाजवाद अन्य राष्ट्रों के समाजवाद से अलग है। सामाजिक न्याय के लिए संविधान में जो प्रावधान दिये गये हैं उनका मुख्य उद्देश्य वितरण की असमानता को दूर करना तथा असमानों में संव्यवहारों में असमानता को दूर करना व कानून का प्रयोग वितरण योग साधन के रूप में समाज में धन का उचित बटवारां करने में किया जाये। इसका विशेष ध्यान रखा गया है।
- हमारे संविधान की उद्देशीयका संविधान का आधारभूत ढांचा है। जिसमें सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक न्याय प्रदान किये जाने की गारंटी प्रदान की गई है। इसके लिए भारतीय संविधान के भाग–3 में मौलिक अधिकार दिये गये हैं। भाग–4 में राज्यों को नीतिनिदेशक तत्व बताये गये हैं, जो राज्य की नीति का आधारस्तम्भ बताये गये हैं।

लेकिन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्रदान किये जाने संबंधी उपरोक्त संवैधानिक उपबंध केवल संविधान के ''आइना'' में छबि बनकर रह गये हैं। लोगों का जीवन स्तर निम्न है, गरीबी, बेकारी, भुखमरी, अशिक्षा, अज्ञानता व्याप्त है। आर्थिक सामनता, सामाजिक न्याय आम जनता से कोसो दूर है।[8]

समाजिक न्याय और समता

सामाजिक न्याय वास्तव में, समता के विचार का व्यावहारिक पक्ष है । अतः सामाजिक जीवन में जहां कहीं भी समता के विचार का खण्डन होगा, वहां सामाजिक अन्याय होगा । यदि धर्म–सम्प्रदाय, प्रजाति अथवा मूलवंश, रंग, जाति, वर्ग, जन्म, लिंग जैसी किसी बात के आधार पर व्यक्ति के बीच इस तरह का भेद किया जाए कि एक व्यक्ति को आगे बढ़ने के अवसर और सुविधाएं मिलें किन्तु दूसरे को नहीं, एक को कुछ अधिकार दिए जाएं और उनको बनाए रखने की उनके हित में व्यवस्था की जाए किन्तु दूसरा उनसे वंचित रहे, एक को उसकी योग्यता के बिना ही सामाजिक प्रतिष्ठा मिल जाए किन्तु दूसरे को अपनी योग्यता सिद्ध करने के बावजूद भी न मिले, अथवा एक को पहले दर्जे का तथा दूसरे का नागरिक माना जाए, तो वहां सामाजिक न्याय का निषेध ही होगा । भारतीय सोच और हमारे मूलभत सांस्कृतिक जीवन में भातृत्व की भावना 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के नैतिक सामाजिक आदर्श में व्याप्त है और लोक–हित की मानवीय चिन्ता 'सर्व भवन्तु सुखिनः, सर्वे सनतु निरामयाः, सर्वे भद्राणी पश्यन्तु, मा कश्चित् दुख भाग्भवेत्' जैसी प्रार्थनओं से समाविष्ठ है ।[9]

विकासशील समाज में सामाजिक न्याय

असल में विकासशील समाजों में पश्चिमी समाजों की तुलना में सामाजिक न्याय ज्यादा रैडिकल रूप में सामने आया है । मसलन, दक्षिण अफ्रीका में अश्वेत लोगों ने रंगभेद के खिलाफ और सत्ता में अपनी हिस्सेदारी के लिए

जोरदार संघर्ष किया । इस संघर्ष की प्रकृति अमेरिका में काले लोगों द्वारा चलाये गये संघर्ष से इस अर्थ में अलग थी कि दक्षिण अफ्रीका में काले लोगों को ज्यादा दमनकारी स्थिति का सामना करना पड़ रहा था। इस संदर्भ में भारत का उदाहरण भी उल्लेखनीय है। बहुसंस्कृतिवाद ने जिन सामुदायिक अधिकारों पर जोर दिया उनमें से कई अधिकार भारतीय संविधान में पहले से ही दर्ज हैं । लेकिन यहाँ सामाजिक न्याय वास्तविक राजनीति में संघर्ष का नारा बन कर उभरा । । इसी तरह पचास और साठ के दशक में राममनोहर लोहिया ने इस बात पर जोर दिया कि पिछड़ों, दलितों, अल्पसंख्यकों और स्त्रियों को एकजुट होकर सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करना चाहिए । लोहिया चाहते थे कि ये समूह एकजुट होकर सत्ता और नौकरियों में ऊँची जातियों के वर्चस्व को चुनौती दें । इस पृष्ठभूमि के साथ नब्बे के दशक के बाद सामाजिक न्याय भारतीय राजनीति का एक प्रमुख नारा बनता चला गया । इसके कारण अभी तक सत्ता से दूर रहे समूहों को सत्ता की राजनीति के केंद्र में आने का मौका मिला। गौरतलब है कि भारत में भी पर्यावरण के आंदोलन चल रहे हैं । लेकिन ये लड़ाइयाँ स्थानीय समुदायों के अपने 'जल, जंगल और जमीन' के संघर्ष से जुड़ी हुई हैं। इस अर्थ में सामाजिक न्याय का संघर्ष लोगों के अस्तित्व और अस्मिता से जुड़ा हुआ संघर्ष है।[10]

समाजिक न्याय की राजनीती

- **आभाहीन सामाजिक न्याय**

टिप्पणी ने अधिकांश सामाजिक न्याय समर्थक बुद्धिजीवियों की भावनाओं को ही उजागर किया था। यह टिप्पणी बताती है कि पिछले लोकसभा चुनाव में ही सामाजिक न्याय की राजनीति आभाहीन हो गई और इससे जुड़े नायक, नायिकाओं का निर्णायक तौर पर पतन हो गया था।

- **वर्ण व्यवस्था के जरिये अन्याय**

भारतवर्ष में सदियों से जारी सामाजिक अन्याय के मूल में वर्ण व्यवस्था रही है। धर्म आधारित वर्ण–व्यवस्था में स्वधर्म पालन के नाम पर कर्म शुद्धता की अनिवार्यता तथा पेशों की विचलनशीलता की निषेधाज्ञा के फलस्वरूप शुद्र–अतिशूद्रों के लिए अध्ययन–अध्यापन, पौरोहित्य, राज्य संचालन में मंत्रणा दान, भूस्वामित्व, राज्य संचालन, सैन्य–वृत्ति, व्यापार–वाणिज्यादी का कोई अवसर नहीं रहा। उन्हें शक्ति के सभी प्रमुख स्नोतों से बहिष्त कर अशक्त तथा मानवेतर बना दिया गया।

- **आरक्षण की अधूरी लड़ाई**

फुले से शुरू हुई यह लड़ाई शाहूजी महाराज, पेरियार से होते हुए बाबा साहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर के प्रयत्घ्नों से शिखर पर पहुंची। इन महामानवों का मानना था कि बहुसंख्यों पर वर्ण व्यवस्था कानूनों को जबरन थोपा गया है। लिहाजा, जबरन बहिष्त कर अन्याय का शिकार बनाए गए लोगों के हित में जबरन कानून बनाकर न्याय दिलाने के लिए ही उन्होंने आरक्षण की लड़ाई लड़ी, लेकिन सामाजिक अन्याय के खात्मे के लिए फुले से शुरू हुई हिस्सेदारी की लड़ाई अधूरी थी। यह मुकम्मल तब होती जब वर्ण व्यवस्था के वंचितों को उन तमाम क्षेत्रों में हिस्सेदारी सुनिश्चित होती, जिनसे इनको सदियों से बहिष्त किया गया था।

- **संख्या के अनुपात में भागदारी**

डॉ. लोहिया विशेष अवसर के सिद्धांत को हकीकत में बदलने के लिए राजनीति, व्यापार, पलटन और ऊंची सरकारी नौकरियों में 90 प्रतिशत शोषितों के लिए 60 प्रतिशत स्थान सुरक्षित कर देने की मांग उठाते रहे, लेकिन शबिहार लेनिनश नाम से मशहूर जगदेव प्रसाद और यूपी के रामस्वरूप वर्मा सार्वजनिक जीवन के हर क्षेत्र में 90 प्रतिशत शोषितों के लिए 90 प्रतिशत स्थान सुरक्षित करने की उग्र हिमायत करते रहे। बाद में वर्ण व्यवस्था के वंचितों के सबसे बड़े नायक के रूप में उभरे कांसीराम सामाजिक न्याय की पूर्णता के लिए एक नए दर्शन, जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी भागीदारी के साथ राजनीति के मैदान में उतरे।

- **भोपाल घोषणापत्र**

12–13 जनवरी, 2002 तक चले भोपाल सम्मलेन से दलित बुद्धिजीवियों ने जो डाइवर्सिटी केंद्रित 21 सूत्रीय दलित एजेंडा जारी किया, उससे सामजिक न्याय के नए अध्याय की शुरुआत हुई। इसे ऐतिहासिक भोपाल घोषणापत्र भी कहते हैं।

- **लुभा रहे कांग्रेस–भाजपा**

दलित–पिछड़े समुदाय की उद्योग–व्यापार में भागीदारी की मांग को ध्यान में रखकर कांग्रेस लोकसभा चुनाव 2004 से ही एससीध्एसटी के लिए उद्यमिता की मांग को अपने घोषणापत्र में जगह देने लगी।

- **उभर रहे नए दल**

अब लोकसभा चुनाव–2014 पूर्व स्थिति यह है कि यूपी में माया व मुलायम, बिहार में लालू व पासवान एक–दूसरे के सबसे बड़े दुश्मन बन गए हैं।[11]

न्याय सम्बन्धी आन्दोलन व मामले

इस देश में 3000 से ज्यादा आन्दोलन चल रहे हैं, 6 लाख गाँव के देश में 35 लाख स्वैच्छिक संस्थायें काम कर रही हैं, दुनिया के सबसे ज्यादा प्रगतिशील कानून यहाँ बने हुए हैं और इसे सबसे बड़ा जीवित लोकतंत्र माना जाता है । उस देश में हिरासत में 9000 से ज्यादा मौतें होती हैं, 15 लाख बच्चों की मौतें कुपोषण के कारण होती है । नीतियां बनना भी जारी है । ऐसे में हम यह सवाल कैसे भूल सकते हैं कि व्यवस्था में वह बदलाव क्यों नहीं आ रहा है, जिससे लोगों की जिन्दगी और जीवन स्तर में बदलाव आये । हमें सबसे पहले अपने आप से यह जरूर पूछना चाहिए कि समाज की समस्या क्या है और उन्हें हल करने के लिए किस तरह के बदलाव की जरूरत है ? आज का दौर नीतियों और कानूनों का दौर है । सरकार समस्याओं के निपटान के लिए नीतियां और कानून बनाती है, ये कानून पहले कागज पर आते हैं । इनहें समाज में तभी उतारा जा सकता है जब उन नीतियों और कानूनों के क्रियान्यवन के लिए पूरा ढांचा खड़ा किया जाए, बजट आवंटित किया जाए, पूरे लोगों की नियुक्ति की जाए, अधोसंरचनात्मक ढांचा खड़ा किया जाए । सरकार ने शिक्षा के अधिकार का कानून बना दिया है, परन्तु गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने के लिए लाखों प्रशिक्षित शिक्षकों, स्कूलों में कमरों, शौचलायों, नई तकनीकों की जरूरत है । इन जरूरतों को पूरा करने के

लिए जितने बजट की जरूरत है, सरकार उससे आधा भी आवंटितनहीं कर रही है, ऐसे में क्या गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अधिकार हासिल हो पायेगा ?[12]

- न्याय प्रदान करने में आने वाली कठिनाईयां

विधि द्वारा स्थापित न्यायलयों को विधिक प्रक्रिया के अनुसार न्यायालय में विधि का शासन लागू किए जाने में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है, जिसके कारण न्याय प्रशासन प्रभावित होता है। उपरोक्त कठिनाईयां निम्नलिखित हैं :–

- न्यायालय में कार्य की अधिकता
- न्यायालय में सभी गवाहों को खर्च नहीं दिया जाता है क्योंकि वह कम होने के कारण जल्दी समाप्त हो जाता है ।
- निःशुल्क विधिक सहायता, अप्रशिक्षित, पैनल लायर के माध्यम से दी जाती है ।
- सरकारी अधिवक्ता राजनैतिक प्रभाव से बनाए जाते हैं इसलिए एक ही दिन में 15–20 प्रकरणों में कार्यवाही किए जाने हेतु सक्षम नहीं होते हैं ।
- न्यायालय के पास प्रतिकर अदायगी हेतु खुद का कोई फण्ड नहीं है, इसलिए प्रार्थी को इलाज हेतु पर्याप्त राशि प्रदान नहीं की जा सकती है ।
- न्यायालय में फाईलों की संख्या अत्यधिक है, जिसके कारण न्यायधीश निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही नहीं कर पाते हैं ।
- न्यायालय और न्यायाधीश राजनीति, मीडिया, प्रमोशन के लालच में डर दबाव के कारण काम करते हैं ।
- बाल न्यायालय भी औपचारिकतापूर्ण एक दिन लगाया जाता है, उसमें विशेषज्ञ की नियुक्ति नहीं होती है ।
- ग्राम न्यायालय भी केवल एक दिन लगाए जाते हैं और ग्राम न्यायालय के अनुरूप ग्रामों में जाकर न्यायधीश सुविधाओं के अभाव के कारण न्याय प्रदान नहीं करते हैं ।
- शासकीय गवाहों को सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती है, जिसके कारण वे डर दबाव के कारण अभियोजन का पक्ष समर्थन नहीं करते हैं, जिसके कारण दोषी व्यक्ति न्यायालय में छूट जाते हैं ।
- न्यायालय और न्यायधीश पर डर दबाव बनाए जाने के लिए झूठे आरोप और शिकायतें की जाती हैं, जिसके कारण न्यायाधीश स्वतंत्रतापूर्वक कार्य नहीं कर पाते हैं ।[13]

सामाजिक न्याय : पिछड़ता हुआ परिवेश

संविधान लागू होने के 63 वर्ष बाद भी देश में असमानता व्याप्त है । हमने आर्थिक असमानता का एक नया पैमाना तय किया है । वह पैमाना है 'गरीबी की रेखा के नीचे' । वैसे तो गरीबी स्वयं अभिशाप है परन्तु यदि कोई गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन करने पर मजबूर हो तो वह असमानता के किस स्तर पर रह रहा है । इसकी कल्पना ही की जा सकती है । देश की बड़ी आबादी आज भी अशिक्षित है । इस निरक्षर आबादी के लिए कुछ वर्ष पहले ही सर्वशिक्षा अभियान प्रारंभ किया गया है । हमारे संविधान ने समाज के ऐसे लोगों को जो सदियों से तरह तरह की ज्यादतियों को सहते आ रहे हैं, अनेक प्रकार की गारंटीयां दी है ।

इन गारंटियों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए संसद और विधानसभाओं तथा शहरी और ग्रामीण निकायों में आरक्षण दिया जाना भी शामिल है । संविधान की इन गारंटियों के बावजूद भारत में आज भी इन दोनों वर्गों का अपेक्षित विकास नहीं हो पाया है । उदाहरण के लिए हमने संवैधानिक प्रावधान कर छुआछुत को प्रतिबंधित कर दिया है ।

इस तरह के लोगों को तभी न्याय मिल सकेगा जब समाज स्वयं पहल करके उन्हें न्याय देगा । इस समय महिलाओं, युवतियो और यहां तक कि बच्चियों के साथ जो जघन्य अपराध हो रहे हैं उन्हें कानून नहीं रोक पा रहा है । इस बात का अधिकार भी दिया है कि मूलभत अधिकारों की अवहेलना की दशा में वे अदालत की शरण ले सकते हैं । परन्तु अदालत की शरण में जाने के लिए वकीलों की आवश्यकता होती है और अच्छे वकील की सेवाएं लेने के लिए मोटी रकम खर्च करनी पड़ती है । इस कारण ये मूलभूत अधिकार आज भी उनकी पहुंच के बाहर हैं जो अभाव की जिंदगी जी रहे हैं।[14]

सामाजिक न्याय का अनुसरण

यदि किसी समाज में बेहिसाब धन–दौलत औश्र इनके स्वामित्व के साथ जुड़ी सत्ता का उपभोग करने वालों तथा बहिष्कृतों और वंचितों के बीच गहरा एवं स्थायी विभाजन मौजूद है, तो हम कहेंगे कि वहाँ सामाजिक न्याय का अभाव है । हम यहाँ सिर्फ समाज में विभिन्न व्यक्तियों के जीवनयापन के विभिन्न स्तरों की चर्चा नहीं कर रहे हैं । न्याय के लिए लोगों के रहन–सहन के तरीकों में पूर्ण समानता और एकरूपता की आवश्यकता नहीं है । लेकिन उस समाज को अन्यायपूर्ण ही माना जायेगा, जहाँ धनी और गरीब के बीच खाई इतनी गहरी हो, कि वे बिल्कुल भिन्न–भिन्न दुनिया में रहने वाले लगें और जहाँ अपेक्षाकृत वंचितों को अपनी स्थिति सुधारने का कोई मौका न मिले, चाहे वे कितना भी कठिन श्रम क्यों न करें । दूसरे शब्दों में, न्यायपूर्ण समाज को लोगों के लिए न्यूनतम बुनियादी स्थितियाँ जरूर मुहैया करानी चाहिए, ताकि वे स्वस्थ और सुरक्षित जीवन जीने में सक्षम हो सकें, समाज में अपनी प्रतिभा का विकास करें तथा इसके साथ समाल अवसरों के जरिये अपने चुने हुए लक्ष्य की और बढ़ें ।

लोगों की जिंदगी के लिए जरूरी न्यनूतम बुनियादी स्थितियों का निर्धारण हम कैसे कर सकते हैं? विभिन्न सरकारों और विश्व स्वास्थ्य संगठन जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं की गणना के लिए विभिन्न तरीके इजाद किये हैं । लेकिन सामान्यतः इस पर सहमति है कि स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक पोषक तत्त्वों की बुनियादी मात्रा, आवास, शुद्ध पेयजल की आपूर्ति, शिक्षा और न्यूनतम मजदूरी इन बुनियादी स्थितियों के महत्त्वपूर्ण हिस्से होंगे । लोगों की बुनियादी जरूरतों की पूर्ति लोकतांत्रिक सरकार की जिम्मेदारी समझी जाती है । हालाँकि, सभी नागरिकों के लिए इन बुनियादी शर्तों की पूर्ति, खासकर भारत जैसे देश में जहाँ गरीबों की बड़ी तादाद है, सरकार पर भारी बोझ बन सकती है ।

अगर हम सब इस बात पर सहमत भी हो जाएँ, कि राज्य को समाज के सबसे वंचित सदस्यों की मदद करनी चाहिए, जिससे वे बाकियों के साथ एक हद तक समानता का आनंद ले सकें, तब भी इस बात पर असहमति हो सकती है कि इस लक्ष्य को पाने का सर्वोत्तम तरीका क्या होगा ।

मुक्त बाजार : राज्य हस्तक्षेप

मुक्त बाजार के समर्थकों का मानना है कि जहाँ तक संभव हो, व्यक्तियों को संपति अर्जित करने के लिए तथा मूल्य, मजदूरी और मुनाफे के मामले में दूसरों के साथ अनुबंध और समझौतों में शामिल होने के लिए स्वतंत्र रहना चाहिए । उन्हें लाभ की अधिकतम मात्रा हासिल करने हेतु एक दूसरे के साथ प्रतिद्वंद्विता करने की छूट होनी चाहिए । यह मुक्त बाजार का सरल चित्रण है । मुक्त बाजार के समर्थक मानते हैं कि अगर बाजारों को राज्य के हस्तक्षेप से मुक्त कर दिया जाय, तो बाजारी कारोबार का योग कुल मिलाकर समाज में लाभ और कर्त्तव्यों का न्यायपूर्ण वितरण सुनिश्चित कर देगा । इससे योग्यता और प्रतिभा से लैस लोगों को अधिक प्रतिफल मिलेगा जबकि अक्षम लोगों को कम हासिल होगा । उनकी मान्यता है कि बाजारी वितरण का जो भी परिणाम हो, वह न्यायसंगत होगा ।

हालाँकि, मुक्त बाजार के सभी समर्थक आज पूर्णतया अप्रतिबंधित बाजार का समर्थन नहीं करेगे कई लोग अब कुछ प्रतिबंध स्वीकार करने को तैयार होंगे । मसलन सभी लोगों के लिए न्यूनतम बुनियादी जीपन–मानक सुनिश्चित करने हेतु राज्य हस्तक्षेप करें, ताकि वे समान शर्तों पर प्रतिस्पर्धा करने में समर्थ हो सकें। लेकिन वे तर्क कर सकते हैं, कि यहाँ भी स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा तथा ऐसी अन्य सेवाओं के विकास के लिए बाजार को अनुमति देना ही लोगों के लिए इन बुनियादी सेवाओं की आपूर्ति का सबसे कारगर तरीका हो सकता है। दूसरे शब्दों में, ऐसी सेवाएँ मुहैया कराने के लिए निजी एजेंसियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जबकि राज्य की नीतियाँ इन सेवाओं को खरीदने के लिए लोगों को सशक्त बनाने की कोशिश करें । उनका मानना है कि मुक्त बाजार उचित और न्यायपूर्ण समाज का आधार होता है ।

हम जैसा चाहें वैसा चावल पसंद कर सकते हैं और पसंदीदा स्कूल जा सकते हैं, बशर्ते उनकी कीमत चुकाने के लिए हमारे पास साधन हों । लेकिन, बुनियादी वस्तुओं और सेवाओं के मामले में महत्वपूर्ण बात यह है, कि अच्छी गुणवत्ता की वस्तुएँ और सेवाएँ लोगों के खरीदने लायक कीतम पर उपलब्ध हों । यही वजह है कि सुदूर ग्रामीण इलाकों में बहुत कम निजी विद्यालय हैं और कुछ खुले भी है, तो वे निम्नस्तरीय हैं । स्वास्थ्य सेवा और आवास के मामले में भी सच यही है । इन परिस्थितियों में सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ता है ।

तर्क तो बहस के दोनों पक्षों के लिए प्रस्तुत किए जा सकतें हैं, लेकिन मुक्त बाजार आमतौर पर पहले से ही सुविधासंपन्न लोगों के हक में काम करने का रूझान दिखलाते हैं । इसी वजह से अनेक लोग तर्क करते है, कि सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए राज्य को यह सुनिश्चित करने की पहल करनी चाहिए, कि समाज के तमाम सदस्यों को बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध हों ।[15]

डॉ0 भीम राव अंबेदकर के अनुसार न्यायपूर्ण समाज वह है, जिसमें परस्पर सम्मान की बढ़ती हुई भावना और अपमान की घटती हुई भावना मिलकर एक करूणा से भरे समाज का निर्माण करें।

सामाजिक न्याय : उपाय व सुझाव

सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि कानून की दृष्टि से सभी लोगों को समान समझा जाए।

- समाज के किसी वर्ग को अथवा व्यक्ति को रंग, जन्म, वंश, जाति, लिंग आदि के आधार पर विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होने चाहिए ।
- सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए जाति–प्रथा को समाप्त करना आवश्यक है ।
- पिछडे वर्ग के लोगों के विकास के लिए उन्हें कुछ विशेष सुविधाएं देनी चाहिए ।
- सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए ।
- न्यायिक प्रक्रिया को सस्ता और सरल बनाया जाए।
- गरीब व आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को सरकारी वकील मुहैया करवाया जाए ।
- गांव, शहर में सामाजिक न्याय से नागरिकों को जागरूक करवाया जाए ।
- लोक अदालतों की कार्यवाही प्रक्रिया सीधी व सरल बनाई जाए ।
- लोक अदालतें जल्दी से जल्दी लगाई जाऐं ।
- झुग्गी–झोंपड़ियों और अशिक्षित लोगों को भी न्याय से सामाजिक न्याय से अवगत करवाया जाए ।
- आज भी भारत में 50 प्रतिशत आबादी जनता न्याय और मौलिक अधिकारों के बारे में कुछ भी नहीं जानती तो उन्हें इनकी उचित जानकारी प्रदान की जाए ।
- नस्लवाद की समस्या को खत्म किया जाए ।
- महिलाएं आज भी जानबूझ कर न्याय मांगने से डरती हैं । उदाहरण किसी महिला के साथ जब कोइ बुरा व्यवहार होता है तो वह शर्म और बदनामी के डर से न्याय की मांग ही नहीं करती ।
- आज भी न्याय सम्बन्धी ऐसी कई धाराएं हैं जो आम नागरिकों को पता तक नहीं है । उन्हें उन धाराओं से जागरूक करवाना चाहिए ।
- महिलाओं सम्बन्धी जो भी कानून है अधिकतर अस्पष्ट नजर आते हैं ।
- कोर्ट या कचहरी में जब महिलाओं के केस की सुनवाई होती है तो उनसे वकील द्वारा भद्दे प्रश्न पूछे जाते हैं । जिसके कारण महिलाएं न्याय मांगने से डरती हैं ।
- सामाजिक न्याय एक देश से बाद में जुड़ता है । परन्तु उससे पहले समाज और परिवार से जुड़ता है । आज भी घरों व समाज में व्यक्ति एक दूसरे का

शोषण करते हैं तो ऐसे परिवारों में जागरूकता लाई जाए और न्याय के लिए सजा कम शिक्षा अधिक दी जाए ।

- न्याय व सामाजिक न्याय मंत्रालय की अधिक से अधिक जानकारी मीडिया व प्रैस पर हर दिन विज्ञापन के रूप में देनी चाहिए ।
- जब कोई खास दिन आने वाला होता है तब तो कई दिन पहले और बाद में बड़े शोरगुल से न्याय के बखान किया जाता है जैसे ही वो दिन व तारीख चली जाती है तो उसके बाद उस का कोई निशान नहीं मिलता है ।
- जिला न्यायालय के साथ–2 अन्य न्यायालयों की संख्या में ओर बढ़ोतरी की जाए ।
- छोटे स्तर के न्यायालयों में न्यायधीशों की संख्या बढ़ाई जाए । ताकि जल्दी से कार्यवाही हो ।
- न्यायधीश की अधिक से अधिक भर्ती की जाए ताकि अधिक संख्या होने पर जल्दी से केस पर फैसले हो सके और लोगों को न्याय मिल सके ।
- गांवों में हर सप्ताह सरपंच व पंचों द्वारा न्याय व सामाजिक पर चर्चा के लिए बैठकें बुलाई जाएं ताकि गांवों के लोगों को उसका ज्ञान हो सके और गांवों के लोगों को उसका ज्ञान हो सके और ये प्रावधान सरपंचों के लिए सरकार द्वारा अति आवश्यक कर देना चाहिए ।
- सरकार को समय–समय पर उच्च अधिकारियों की समिति बना कर उन्हें लोक अदालतों व गांवों में होने वाली बैठकों की जांच करवानी चाहिए ।
- जिला उपायुक्त को प्रत्येक सप्ताह न्याय सम्बन्धी मामलों में सुधार की जांच की रिर्पोट मांगनी चाहिए।
- गवाहों को उचित सुरक्षा मुहैया करवानी चाहिए ताकि वो न्याय का सचा पक्ष रख सकें ।
- लोक अदालतों में महिला न्यायधीशों की संख्या बढ़ायी जाए । ताकि महिलाऐं खुलकर उनके सामने अपने ब्यान दे सके और न्याय की प्राप्ति हो ।
- न्यायधीशों के अलावा एक अलग से पैनल बनाया जाए । जिसमें एक अध्यापक वर्ग और एक कानून विशेषज्ञ वर्ग से सम्बन्धित महिला के लिया जाए । ये पैनल सरकार की बजाए अर्धसरकारी हो जो समाज से जुड़ाव रखते हों । इनकी डयूटी कस्बे व शहरों में घटने वाली घटनाओं पर नजर रखे जो अपराध के कारण बनते हैं ।

निषर्कषः– उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि संविधान के अंतर्गत सामाजिक न्याय की स्थापना की व्यवस्था की गई है इसमे अभी भी सुधार की आवश्यकता है।

संविधान में सामाजिक न्याय के साथ–2 आर्थिक न्याय के पहलू को भी जोड़ा गया है। सविंधान में कुछ ऐसे सिद्धान्त, नियम है जो राज्य को एक आदर्श राज्य बनने का आदेश देते हैं । जिसमें राजनीतिक न्याय, सामाजिक न्याय और आर्थिक न्याय को शामिल किया गया । परन्तु सामाजिक न्याय एक देश के लिए अति आवश्यक है ।

संदर्भ सूची

1. राय गुलशन,"भारतीय संविधान का कार्यात्मक स्वरूप एवं राजनीतिक विज्ञान" ज्योति बुक डिपो जालधंर 2009–10 पेज नं 237–238
2. पुरी वी.के.,"राजनीतिक सिद्धान्त" मल्होत्रा बुक डिपो, जालन्धर 2011 पेज नं 57
3. भारतीय चिंतन में सामाजिक न्याय की अवधारणा "जब राज्य में न्याय का चरित्र ही न हो" डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.सजृनगाथा.कॉम 23 सितम्बर 2013
4. पांडये सविता "भारतीय संविधान और सामाजिक न्याय" मिडियाभारती.इन
5. रस्तोगी जी.एन.," भारत का संविधान सिद्वान्त और व्यवहार, वी.के. पब्लिकेशन नई दिल्ली 2006–07 पेज नं 42–43
6. वर्मा, विरेन्द्र कुमार "डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.सजृनगाथा.कॉम, 23 सितम्बर 2013
7. वर्मा सोमनाथ,"राजनीति विज्ञान की प्रमुख अवधारणाएं एवं भारत में लोकतन्त्र ज्योति बुक डिपो जालन्धर 2010 पेज नं बी 49–50
8. उमेश कुमार गुप्ता का आलेख भारत का संविधान और सामाजिक न्याय "डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.रचनाकार. ओरगेनाईजेशन, 4 जनवरी 2012
9. अरिहंत मिडिया प्रामोटर,"इण्डियन पोलिटी एण्ड गर्वेनस" मेरठ, मार्च, 15, 2011
10. सामाजिक न्याय हाय.विकिपिडिया. ओरग्रेनाईजेशन / एस / 76जेटी
11. दुसाध एच.एल., संकट में सामाजिक न्याय की राजनीति "डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.जागरण.कॉम, पब्लिश दिनांक 26 मार्च 2014
12. भारतीय चिंतन में सामाजिक न्याय की अवधारणा, सजृनगाथ.काम
13. गुप्ता, उमेश कुमार "भारतीय न्याय व्यवस्था" शुक्रवार 2 मई 2014
14. पीपल्ससमाचार.को.इन
15. सचिव, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी "राजनैतिक सिद्धान्त" नोवा पब्लिकेशन सी–51 फोकल प्वांइट जालन्धर पेज नं 62–63